ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

126

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

मार्च-अप्रैल 2024 • मूल्य ₹ 40

हम भारत के लोग

- इलैक्टोरल बॉण्ड का जिन्न
- मुख्यमन्त्री, राजभवन और ईडी
- उपभोक्ताओं की उम्मीद का कानून

सबलोग-126

वर्ष 15, अंक 2, मार्च–अप्रैल 2024

प्रकाशन 25.03.2024

ISSN 2277-5897 SABLOG

PEER REVIEWED JOURNAL

सम्पादक

किशन कालजयी

संयुक्त सम्पादक

प्रकाश देवकुलिश

राजन अग्रवाल

ब्यूरो

उत्तर प्रदेश : शिवाशंकर पाण्डेय

मध्यप्रदेश : जावेद अनीस

बिहार : कुमार कृष्णन

उत्तराखण्ड : सुप्रिया रतूड़ी

झारखण्ड : विवेक आर्यन

समीक्षा समिति (Peer Review Committee)

आनन्द कुमार

सुबोध नारायण मालाकार

मणीन्द्र नाथ ठाकुर

सफदर इमाम कादरी

मधुरेश

आनन्द प्रधान

मंजु रानी सिंह

महादेव टोप्पो

विजय कुमार

आशा

सन्तोष कुमार शुक्ल

अखलाक 'आहन'

प्रबन्ध निदेशक

अभय कुमार झा

सम्पादकीय सम्पर्क

बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,

रोहिणी, दिल्ली-110089

+ 918340436365

sablogmonthly@gmail.com, sablog.in

वेब सहायक : गुलशन कुमार चौधरी

सदस्यता शुल्क

एक अंक : 40 रुपए–वार्षिक : 450 रुपए

द्विवार्षिक : 900 रुपए–आजीवन : 5000 रुपए

सबलोग

खाता संख्या-49480200000045

बैंक ऑफ बड़ौदा, शाखा-बादली, दिल्ली

IFSC-BARB0TRDBAD

(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिन्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।

पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिये न्यायक्षेत्र दिल्ली।

संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन

हम भारत के लोग

किस भारत के कौन लोग : **विनोद शाही** 4

चुनावी भ्रष्टाचार : **शैलेन्द्र चौहान** 7

भारतीय समाज में जाति का अनिवार्य बोझ : **राकेश भारतीय** 10

सार्वजनिक विमर्श का खोखलापन : **हिलाल अहमद** 14

लोकतन्त्र की जमीन और आम आदमी : **जीवन सिंह** 16

चार शब्दों से प्रारम्भ होता है भारत का संविधान : **सुबीर सिन्हा** 18

नागरिक की बदलती अवधारणा बनाम दास का पुनर्जन्म : **रामनरेश राम** 21

सृजनलोक

पाँच कविताएँ : **प्रिया वर्मा,** टिप्पणी : **हृषीकेश सुलभ** 23

विशेष टिप्पणी

मुद्दा / इलैक्टोरल बॉण्ड का जिन्न : **योगेन्द्र यादव** 25

राज्य

उत्तर प्रदेश / 18 वीं लोकसभा में गाँधी परिवार से मुक्ति : **शिवाशंकर पाण्डेय** 27

झारखण्ड / मुख्यमन्त्री, राजभवन और ईडी : **विवेक आर्यन** 29

उत्तराखण्ड / हल्द्वानी में हिंसा : **सोनू झा** 31

स्तम्भ

चतुर्दिक / पिछले चुनाव का परिणाम और अठारहवीं लोकसभा : **रविभूषण** 32

यत्र-तत्र / छत्तीसगढ़ी नाचा, मँदराजी और हबीब तनवीर : **जय प्रकाश** 35

तीसरी घण्टी / उत्पीड़ितों के रंगमंच का प्रस्थान बिन्दु : **राजेश कुमार** 38

कथित-अकथित / सूडान की सुबह का इन्तजार : **धीरंजन मालवे** 41

कविताघर / कविता की भाषा : **प्रियदर्शन** 43

विविध

शोध लेख / रामविलास शर्मा और भक्तिकालीन चेतना : **संजय गौतम** 45

समाज / लोकसमाज का बदलता हुआ यथार्थ : **स्वप्निल श्रीवास्तव** 48

संवाद / सामाजिक चेतना की सैद्धान्तिकी : **अरुण माहेश्वरी** 50

खेती-किसानी / न्यूनतम समर्थन मूल्य और किसानी : **अरविंद सरदाना** 52

शख्सियत / विजय सिंह 'पथिक' का जीवन और संघर्ष : **मलखान सिंह** 54

सामयिक / उपभोक्ताओं की उम्मीद का कानून : **योगेश कुमार गोयल** 57

सिनेमा / जातीय वर्चस्व से पद-प्रतिष्ठा की ओर : **रक्षा गीता** 59

आदिवासियत / धूमिल होती आदिवासी मौलिकता : **अभय सागर मिंज** 62

प्रसंगवश / शब्दों के ठेकेदार : **संजीव ठाकुर** 64

पुस्तक समीक्षा / अँधेरे में रोशनी तलाशती एक किताब : **योगेन्द्र** 65

लिये लुकाठी हाथ / कुछ प्रसन्न हुए, कुछ सन्न! : **गिरीश पंकज** 66

आवरण : **शशिकान्त सिंह**

अगला अंक : लोकतन्त्र का युद्ध और आयुध

किस भारत के कौन लोग

विनोद शाही

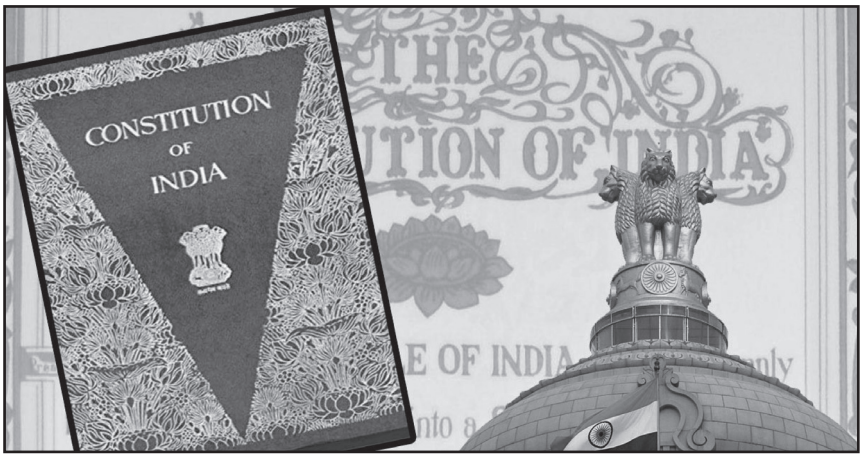

भारतीयता के एक सीमित और संकीर्ण रूप को राष्ट्रवाद की तरह गठित कर लिया जाता है। फिर सत्ता के एक खास रूप और राजनीतिक दल से उसका सम्बन्ध जोड़ लिया जाता है। इस तरह भारत को एक नये रूप में परिभाषित करने की बात सामने आती है। उससे असहमत होने वालों को देशद्रोही तक कहा जा सकता है।

लेखक हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक हैं।
+919814658098
drvinodshahi@gmail.com

एक दफा भारत का संविधान बन गया और उसकी प्रस्तावना में यह लिख दिया गया कि 'हम भारत के लोग' इस संविधान को लागू करने करवाने के पीछे की असल ताकत हैं, तो इस पर पुनर्विचार की प्रक्रिया करीब-करीब बन्द हो गयी। दिक्कत यह है कि भारत और उसके लोग, दोनों दो अमूर्त धारणाएँ हैं, जिनकी बहुत तरह की अलग-अलग व्याख्या सम्भव है।

जहाँ तक संविधान निर्माताओं की मूल-चिन्ता का प्रश्न है, वह लोगों की सामूहिकता से निर्मित होने वाली 'हम' की अवधारणा से सम्बन्ध रखती है। 'हम', यानी हमारा कोई सामूहिक रूप, जिसके साथ हम सब बिना किसी सन्देह के जुड़े रह सकें। इसके लिए कुछ बहुत ऊँचे आदर्शों की परिकल्पना कर ली गयी, जिनसे भारत के लोग कमोबेश सहमत हो सकते हों। इनमें से एक राष्ट्र की प्रभुसत्ता की बात है, जिस पर किसी तरह का समझौता सम्भव नहीं है। परन्तु वह प्रभुसत्ता कैसे बनी रहेगी उसके लिए कौन से रास्ते अपनाए जाएँगे, इसे लेकर विचारों की भिन्नता दिखाई देती है। संविधान ने इसके लिए हमारे प्रजातान्त्रिक होने और बने रहने के विकल्प को चुना है। फिर उसे समाजवादी लक्ष्य के प्रति भी समर्पित कर दिया गया है। सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने के लिए बात हमारे धर्म-निरपेक्ष या पन्थ-निरपेक्ष होने तक चली गयी है।

जहाँ तक सभी के लिए समान न्याय की बात है उसे स्वीकार करते हुए भी सवाल उठता रहता है कि उसकी संस्थानों पर किसी विशेष वर्ग का कब्जा तो नहीं हो गया है। यही स्थिति विकास करने के समान अवसर पाने पर भी लागू होती है। दिखाई तो यही देता है कि अवसर सबके लिए समान रूप में खोल दिए गये हैं। परन्तु परोक्ष रूप में वे किस तरह कुछ विशेष वर्गों के लिए अधिक खुले होते हैं, इसे देख पाना कठिन नहीं है। न्याय जिनकी ओर अधिक झुका होता है तथा विकास के अवसर जिनकी अधिक परवाह करते हैं, समाज के वही विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग एक तरह से 'भारत के वे लोग' हो जाते हैं, जिसे संविधान 'हम' कहकर सम्बोधित करता है।

तब सवाल उठता है कि असल भारत कौन सा है और किन लोगों का है?

आजादी मिलने के बाद हमें जो भारत मिला है, वह एक विभाजित भारत है। विभाजन का आधार साम्प्रदायिक रहा है। इसलिए यह सवाल भी साथ ही हमारे सामने उठ खड़ा होता है कि भारत किस धर्म को मानने वाले लोगों का है? जब हमने एक ऐसे भारत को स्वीकार कर लिया है, जिसका साम्प्रदायिक विभाजन हुआ है तब उसमें जब हम संवैधानिक रूप में धर्मनिरपेक्ष होने की बात को सभी लोगों की सामूहिक जरूरत

और चेतना की अभिव्यक्ति की तरह प्रस्तुत करते हैं, तब वह वांछनीय होने के बावजूद एक आरोपित बात लगने लगती है। इस बात का सीधा-साधा मतलब यह है कि जब तक पाकिस्तान और बांग्लादेश एक राज्य के रूप में इस्लाम को सबसे ऊपर रखने की बात करते रहेंगे, भारत के लिए एक राज्य की तरह धर्मनिरपेक्ष बने रहने के रास्ते में हमेशा अड़चन आती रहेगी। विभाजन को रद्द करना अब सम्भव नहीं है। पर तब क्या भारत का धर्मनिरपेक्ष हो पाना भी एक असम्भावना है? तब तक क्या भारत के हिन्दू-मुसलमान-सिख-इसाई का, 'हम सब भारत के लोग हैं'—इस रूप में समाहार हो सकता है?

यहाँ मैं अपने संविधान निर्माताओं में प्रमुख बी.आर. अम्बेडकर की चर्चा करना चाहूँगा। भारत को इतने महान उच्च आदर्शों की परिकल्पना से जोड़ने वाले इस मनीषी को भी पाकिस्तान और जिन्ना के सन्दर्भ में यह लगता रहा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि संकट के क्षणों में भारत के मुसलमान, भारत की ओर न रहकर, किसी मुस्लिम देश की ओर तो नहीं झुक जाएँगे? आजाद भारत के मुसलमानों ने अम्बेडकर जैसे लोगों की इस चिन्ता को खारिज करने में बहुत दूर तक अपनी सकारात्मक भूमिका पर मोहर लगायी है।

भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने की दिशा में अग्रसर होने वाली भारतीयता से आप यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह हमें भारत की उसे आत्मा के साथ जोड़ सकेगी जिसे हमने धर्म और सम्प्रदायों से ऊपर उठकर ही पाया है। यह बात हिन्दू धर्म के अभी तक ठीक से एक धर्म ना हो सकने की बात से भी जाहिर होती है। दिक्कत यह है कि अब हम हिन्दू धर्म की व्याख्या भी किसी विधिवत धर्म की तरह करने लग पड़े हैं। तथापि यदि हम अपने हिन्दू होने के वास्तविक इतिहास को सामने रखेंगे तो हमारा साम्प्रदायिक होना उत्तरोत्तर कठिन होता चला जाएगा।

यहाँ हिन्दू धर्म के इस इतिहास की कुछ बुनियादी बातों की तरफ इशारा करना जरूरी लगता है। हिन्दू धर्म को एक धर्म की तरह गठित करने के लिए बुनियाद की तरह जो ग्रन्थ आज भी खारिज नहीं हो सका है वह है वेद। हम जानते हैं कि वेद संहिताएँ है। उनका सम्बन्ध बहू देव वादी विचारधारा से है। बेशक किसी एक ब्रह्म में उन सभी देवों के विलय की बात भी बीच-बीच में चली आती है। देवों के ब्रह्म में विलय के बावजूद इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, सूर्य, वरुण तथा अन्य देवताओं का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व बना और बचा रहता है। लेकिन बाद में हिन्दू धर्म की यह उदारवादी जमीन, कुछ लोगों की विचारधाराओं के बाड़ों में, कैद होने लगती है। तब हम पाते हैं कि बाकी अवतार पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। फिर राम के मर्यादावादी अवतार को उन सबके ऊपर इस तरह बिठा दिया जाता है, जैसे वे ही ब्रह्म के एकमात्र प्रतिनिधि या पर्याय हों। वेद की जगह भगवद्-गीता को ले आने की बात भी धीरे-धीरे पीछे छूट जाती है। इस तरह तुलसी के रामचरितमानस को एक धर्म ग्रन्थ की तरह सबसे ऊपर बैठा लेने का प्रयास होने लगता है।

यह सारा मामला भारत को किसी ऐसी एकरूपता में बाँधने का है, जिससे यह लगे कि भारत किसी खास विचारधारा के आस-पास केन्द्रित है। फिर उसी विचारधारा के आधार पर भारत के संगठित होने की बात सामने आती है। लोगों को संगठित करने के लिए भारतीयता के एक सीमित और संकीर्ण रूप को राष्ट्रवाद की तरह गठित कर लिया जाता है। फिर सत्ता के एक खास रूप और राजनीतिक दल से उसका सम्बन्ध जोड़ लिया जाता है। इस तरह भारत को एक नये रूप में परिभाषित करने की बात सामने आती है। उसे असहमत होने वालों को देशद्रोही तक कहा जा सकता है।

इस तरह 'हम भारत के लोग' एक नयी व्याख्या के रूप में हमारे सामने आते हैं। अब इसका अर्थ भारत के सामूहिक व्यक्तित्व के बजाय, बहुसंख्यक राजनीतिक व्यक्तित्व वाला हो जाता है।

तथापि इस तरह से भारत की जो व्याख्या की जाती है, वह भारत के लोगों की ठीक से व्याख्या करने में कामयाब नहीं हो पाती। जहाँ तक भारत के लोगों की बात है, उनका सम्बन्ध किसी खास धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान भर से ही नहीं है। आपितु वह भारत के सामूहिक विकास में लोगों की हिस्सेदारी से प्रकट होने वाली बात अधिक है।

आजकल प्राच्यवादी दृष्टि से विचार करते हुए बहुत से लोग अक्सर यह कहते देखे जाते हैं कि अँग्रेजों के आने से पहले भारत का विश्व की आर्थिकता में योगदान एक चौथाई से अधिक था। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र की संस्कृति भी, भारत को विश्व के लिए अनुकरणीय बनाती थी। परन्तु अँग्रेज जब भारत से गये तब भारत की विश्व की आर्थिक संरचना में हिस्सेदारी दो प्रतिशत के आस-पास ही बची रह गयी थी। विकास की पटरी से नीचे उतरते ही संस्कृति भी अपने उज्जवल पक्ष से विश्व को प्रभावित करने के लिए जद्दो-जहद करती दिखाई देने लगती है। आजाद होते ही भारत खुद को इस दिशा में सँभालने का प्रयास करने में मशगूल हो जाता है। पर तब होता यह है कि विकास के लिए भारत को समाजवादी प्रगति का मॉडल, सर्वाधिक लुभावना लगने लगता है।

यह देखते हुए संविधान के निर्माताओं ने 'हम भारत के लोगों' के सपनों में, समाजवाद को भी जगह दे दी। यहाँ यह समझना जरूरी है कि यह विचारधारा, गाँधी के अन्त्योदय तथा सर्वोदय की अधिक व्यापक अवधारणाओं को एक तरफ रखने की कीमत पर ही, अख्तियार की गयी। इसे आप उस समय की जरूरत कह सकते हैं। रूस की पंचवर्षीय योजनाएँ और उस देश का हमारे साथ खुले मन से किया जाने वाला सहयोग हमें, उस दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक जरूरी जमीन प्रदान करता है।

लेकिन इससे एक दूसरी दिक्कत खड़ी हो जाती है। वह यह है कि हम भारत की स्थितियों के मुताबिक समाजवाद की अपनी तरीके की पुनर्व्याख्या कैसे करेंगे। अपर्याप्त औद्योगिक विकास के कारण, मजदूर हमारे यहाँ परिवर्तन का मुख्य आधार बनने की स्थिति में नहीं आ पाता। दूसरी तरफ भारत के कृषि-प्रधान देश होने की स्थिति में बना रहता है। परन्तु वह क्षेत्र जमीन्दारों और छोटे किसानों में विभाजित दिखाई देता है।

मजदूर और किसान, दोनों ही भारत में मौजूद, जातियों के विविध स्तरों और उप-स्तरों

में विभाजित रहते हैं। इस वजह से वे कोई बड़ा परिवर्तनकारी आन्दोलन खड़ा करने से चूकते रहते हैं। अब जैसे आप मौजूदा दौर के किसान आन्दोलन को ले लीजिए। भारत के लोगों को इससे बहुत उम्मीदें थी। महात्मा गाँधी भारत को गाँव का देश मानते थे। हमारी आर्थिक व्यवस्था की एक धुरी कृषि भी है। इस वजह से किसान की स्थिति हमारे यहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। परन्तु भारत के कृषि उत्पादन, विश्व की आर्थिक व्यवस्था के मौजूदा बाजारवादी दौर की जरूरतों की पूर्ति करने वाले नहीं हो पा रहे हैं। कृषि का कॉर्पोरेट बाजार, उच्च तकनीकी पर आधारित बाजार में बदलता जाता है। कृषि उत्पादों पर आधारित उद्योग भी हमारे यहाँ बहुत विकसित नहीं हो पाये हैं। एक विकासशील देश होने की वजह से, अनाज का संग्रह करने वाले गोदाम पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं। मौजूदा दौर में कॉर्पोरेट क्षेत्र की नजर गोदाम वाले पहलू की ओर आयी है। किसान परम्परागत मण्डी करण पर अधिक भरोसा करता है। इससे कृषि-उत्पाद और बाजार की बीच जो सकारात्मक सम्बन्ध बनने चाहिए थे वे बन ही नहीं पा रहे है। किसानी अपने पारम्परिक रूप को बचाए रखने के लिए आन्दोलन करने के लिए बाहर निकल आयी है। इस बात को समझना कठिन नहीं है कि इसके बहुत दूरगामी परिणाम नहीं हो सकेंगे।

दूसरी बात यह भी ध्यान देने लायक है कि मजदूर को केन्द्र में रखकर चलने वाली वाम राजनीति पर भी किसानों को बहुत भरोसा नहीं है। काँग्रेस किसान के पक्षधर वाली अपनी पारम्परिक भूमिका और जमीन को बहुत हद तक खो चुकी है। किसानों के पास गैर राजनीतिक होने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है। परन्तु ऐसे में किसान और सरकार के बीच जो बातचीत होती है, उसके बजाय, किसान और बाजार के बीच यदि कोई सकारात्मक संवाद हो सके, तो ही उसके कोई ऐसी परिणाम हो सकते हैं, जो भारत को प्रगति के रास्ते पर आगे ले जा सकेंगे।

इस परिदृश्य को समझने पर हमारे लिए यह सवाल पुनर्विचार के केन्द्र में आ जाता है कि भारत के विकास और प्रगति का आधार क्या है और इसकी मुख्य दिशा क्या होनी चाहिए। यह न काँग्रेस के तरीके वाले समाजवाद के बस की बात रह गयी है और न वाम-दलों की प्रगति की अप्रासंगिक अवधारणा के।

भारत के विकास और प्रगति का तीसरा जो आधारभूत पहलू है, वह प्राकृतिक संसाधनों के बाजार से जुड़ा है। मजदूर, किसान और खनिक–ये तीन भारतीय प्रगति और विकास के मुख्य जन-संसाधन हैं। लेकिन यह तीसरा क्षेत्र भी अनेक अन्तर्विरोधों का शिकार है। इसकी वजह से भारत के उत्तर-पूर्व के बहुत से लोग विस्थापित होने की स्थिति में चले गये हैं। उससे ऐसी विभाजनकारी लहरें पैदा हो जाती हैं, जो उलटे भारत की प्रभु सत्ता के लिए ही नुकसानदेह होती हैं।

तो कुल मिलाकर भारत के विकास और प्रगति के लिए अधिक फायदेमन्द हो गया है, एक चौथा जन-संसाधन, जो तकनीकी रूप में कुशल नौजवानों के रूप में सामने आया है। इस 'स्किल्ड लेबर' का एक बड़ा बाजार है। भारत की उसमें काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। ऐसे में भारत को विकास और प्रगति की राह पर ले जाने वाले, 'हम भारत के जो लोग' सामने वाली पाँत में खड़े दिखाई देते हैं, उनमें शिक्षित नौजवान आगे होते चले जा रहे हैं। लेकिन इस क्षेत्र का अन्तर्विरोध यह है कि उसका पूरा दारोमदार विश्व बाजार में उसकी भागीदारी पर टिका है। वह भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने के बजाय, भारत को विश्व बाजार के एक हिस्सेदार के रूप में देखने की स्थिति में चला जाता है। जाहिर है उसकी सोच अगर बहुराष्ट्रीय होती है, तो उस पर किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिए।

अब हम इस बात को ठीक से समझ सकते हैं कि भारत में मौजूदा राजनीति, भारत को भारतीयता और भारतीय राष्ट्र के रूप में जिस तरह परिभाषित करने का प्रयास कर रही है उसके पीछे कौन लोग खड़े हैं। उनमें बेरोजगार वर्ग की एक बड़ी भूमिका है। निम्न वर्गों में मौजूद वे लोग, जिन्हें हम एक भक्त समाज में बदलता हुआ देखते हैं, वे भी इस हिन्द-भारतीयता में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। इसके अलावा भारत के बाजार में अधिक बड़ी हिस्सेदारी करने वाले व्यापारी और पूँजीपति हैं, जो इस तरह की भारतीयता वाले राष्ट्र की प्रभुसत्ता को सबसे ऊपर मानते हैं। थोड़ा सरलीकृत रूप में कहें तो इसके पीछे भारत का वह अमीर तबका है जो गरीबों और वंचितों को भारतीयता के जन-संसाधन की तरह इस्तेमाल करने के लिए प्रतिबद्ध है। यह सत्ता पर काबिज होने का एक बेहतर तरीका तो है, परन्तु इससे भारत के विकास और प्रगति के लिए कितनी सकारात्मक ऊर्जा निकलती है, इस बाबत अगर हमें सन्देह होता है, तो वह निराधार नहीं है।

भारत को, भारत के रूप में गठित करने का, इससे बेहतर तरीका हमारे पास था। उसका सम्बन्ध मनुष्य की तात्त्विक चेतना को सम्बोधित करने से है। भारत के सांख्य, न्याय और योग जैसे दर्शन, बौद्ध और जैन विचारधारा, उपनिषदों के प्रश्नाकुल संवाद, गोरखनाथ से लेकर कबीर आदि तक के आह्वान और भारत में आने वाले सूफियों की उदार विचारधारा–ये सब किसी उच्चतर चेतना की बात करते हैं। ऐसी चेतना की, जो न हिन्दू है ना मुसलमान, और जो न सिख हो सकती है, न इसाई। 'न को हिन्दू न मुसलमान'–वाली इस सोच को मध्यकाल के बाद, हमारे यहाँ छोड़ दिया गया। हालाँकि हम यह देख सकते हैं कि वही विचारधारा भारत को भारत की तरह एकजुट किये रखने में सर्वाधिक सफल होती रही है। उसके द्वारा भारत के सामाजिक परिदृश्य में भी बहुत से सकारात्मक परिवर्तन होते दिखाई देते रहे हैं। उसमें आत्मालोचन करके, खुद को सुधारने की जो प्रवृत्ति रही है, उसे हम आधुनिक काल में गाँधी तक आते हुए देख सकते हैं। परन्तु सांस्कृतिक रूप में गाँधी भी ईश्वर अल्लाह का जोड़ बैठाने में लग जाते हैं। इससे तात्त्विक-चेतना वाली गहराई जमीन पकड़ने से रह जाती है।

भारतीय संविधान, 'हम भारत के लोगों' के रूप में, जिस महत्त्वपूर्ण बात को हमारे लिए एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है, उसे जमीन पर उतारने के लिए, बहुत कुछ करना अभी बाकी है।

■

चुनावी भ्रष्टाचार

शैलेन्द्र चौहान

पिछले सात दशकों से भारतीय लोकतन्त्र में राज्य सरकारों के स्तर पर सत्तारूढ़ निजाम द्वारा अगला चुनाव लड़ने के लिए नौकरशाही के जरिये नियोजित उगाही करने की प्रौद्योगिकी लगभग स्थापित हो चुकी है। इस प्रक्रिया ने क्लेप्टोकरैंसी और सुविधा शुल्क के बीच का फर्क काफी हद तक कम कर दिया है। भारत जैसे संसदीय लोकतन्त्र में चुनाव लड़ने और उसमें जीतने-हारने की प्रक्रिया अवैध धन के इस्तेमाल और उसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार का प्रमुख स्रोत बनी हुई है।

भ्रष्टाचार की उचित परिभाषा के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। मैकियावेली ने भ्रष्टाचार के सबसे पुराने आयाम को राजनीतिक अधिकारियों और नागरिकों के बीच सद्गुणों की गिरावट के रूप में रेखांकित किया। मनोवैज्ञानिक होर्स्ट-एबरहार्ड रिक्टर का सिद्धान्त भ्रष्टाचार को राजनीतिक मूल्यों को कमजोर करने के रूप में परिभाषित करता है। सदाचार के ह्रास के रूप में भ्रष्टाचार की आलोचना की गयी है और इसे सार्वभौमिक बनाने के लिए बहुत व्यापक और बहुत व्यक्तिपरक बताया गया है। भ्रष्टाचार का दूसरा आयाम विकृत आचरण के रूप में भ्रष्टाचार है। समाजशास्त्री क्रिश्चियन हॉफ्लिंग और अर्थशास्त्री जे जे सेंटुइरा दोनों ने भ्रष्टाचार को सामाजिक बीमारी बताया; बाद वाले ने भ्रष्टाचार को अपने लाभ के लिए सार्वजनिक शक्ति के दुरुपयोग के रूप में परिभाषित किया है।

भ्रष्टाचार के कुछ रूप जिन्हें अब 'संस्थागत भ्रष्टाचार' कहा जाता है– रिश्वतखोरी और अन्य प्रकार के स्पष्ट व्यक्तिगत लाभ से अलग हैं। उदाहरण के लिए, कुछ राज्य संस्थाएँ लगातार जनता के हितों के विरुद्ध कार्य कर सकती हैं, जैसे कि अपने हित के लिए सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करना, या दण्ड से मुक्ति के साथ अवैध या अनैतिक व्यवहार में संलग्न होना। व्यक्तियों द्वारा रिश्वतखोरी और प्रत्यक्ष आपराधिक कृत्य आवश्यक रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं, लेकिन संस्था फिर भी समग्र रूप से अनैतिक कार्य करती है। माफिया राज्य की घटना संस्थागत भ्रष्टाचार का एक उदाहरण है।

पिछले सात दशकों से भारतीय लोकतन्त्र में राज्य सरकारों के स्तर पर सत्तारूढ़ निजाम द्वारा अगला चुनाव लड़ने के लिए नौकरशाही के जरिये नियोजित उगाही करने की प्रौद्योगिकी लगभग स्थापित हो चुकी है। इस प्रक्रिया ने क्लेप्टोकरैंसी और सुविधा शुल्क के बीच का फर्क काफी हद तक कम कर दिया है। भारत जैसे संसदीय लोकतन्त्र में चुनाव लड़ने और उसमें जीतने-हारने की प्रक्रिया अवैध धन के इस्तेमाल और उसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार का प्रमुख स्रोत बनी हुई है। यह समस्या अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण के दिनों में भी थी, लेकिन बाजारोन्मुख व्यवस्था के जमाने में इसने पहले से कहीं ज्यादा भीषण रूप ग्रहण कर लिया है। एक तरफ चुनावों की संख्या और बारम्बारता बढ़ रही है, दूसरी तरफ राजनेताओं को चुनाव लड़ने और पार्टियाँ चलाने के लिए धन की जरूरत। नौकरशाही का इस्तेमाल करके धन उगाहने के साथ-साथ राजनीतिक दल निजी स्रोतों से बड़े पैमाने पर खुफिया अनुदान प्राप्त करते हैं। यह काला धन होता है। बदले में नेतागण उन्हीं आर्थिक हितों की सेवा करने का वचन देते हैं।

लेखक स्वतन्त्र पत्रकार हैं।
+917838897877
shailendrachauhan@hotmail.com